# गीता विषयक योगमय अवधारणा

*डॉ. धर्मसिंह गुर्जर

**सारांश**

भारतीय ज्ञान परपरा में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मनुष्य का सर्वांगीण विकास करना है। शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा से विकसित मनुष्य ही मनुष्यता के गुणों से ओतप्रोत होगा। मानव जीवन का उद्ददेश्य धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष रूपी पुरूषार्थ की प्राप्ति है। योग के अधिगम का लक्ष्य परम पुरूषार्थ मोक्ष की प्राप्ति है। मानव जीवन में अधिगम एक सतत् चलने वाली प्रक्रिया है। अधिगम से तात्पर्य सीखने से है। मानवीय गुणों के अधिगम के बिना मनुष्य का निर्माण नही होता है। मनुष्य का देह धारण कर लेने मात्र से विवेक की प्राप्ति नही होती है। विवेक आत्मज्ञान से प्राप्त होता है। आत्मा का ज्ञान होने के पश्चात् ही मनुष्य विवेकवान होता है। विवेकशील मनुष्य ही सब में अपने को और सबकों अपने में देखने की दृष्टि प्राप्त करता है। देखने ही यह दृष्टि आत्मदर्शन के पश्चात् प्राप्त होती है। अध्यात्म के ज्ञन से जीवन के विषाद से मुक्ति मिलती है। दुःख की अत्यधिक निवृत्ति ही मोक्ष है, जिसकी प्राप्ति योग के अधिगम से संभव है।

प्रस्तुत शोध पत्र में गीता में योग के अधिगम के बारे में वर्णन किया गया है। जीवन में विषाद् से मुक्ति अपने वास्तविक स्वरूप के बोध के साथ ही संभव है। देहात्म भाव से मुक्त होकर आत्म भाव में प्रतिष्ठित होना योग है। दृष्टा का अपने स्वरूप का अधिगम योग का अभीष्ट है। यह योग विद्या ही दृष्टा और दृश्य के संयोग से उत्पन्न अविद्याजनित मानसिक क्लेशों से मुक्ति दिलाती है। विद्या वह है जो मुक्ति दिलाएं (सा विद्या या विमुक्तये)।

**कुटशब्द :** योग, अधिगम, मानसिक विषाद, समत्व, निष्काम कर्म तथा कर्म की कुशलता

## प्रस्तावना

"योगस्थ" कर्मणी कुरू भगवान श्री कृष्ण ने कहा योगमय रहकर कर्म करों, योगयय रहों। 'योग' उज्यते इति। "गीता" योग का दृद्दद उपदेश देती है।

## अधिगम

सामान्या अर्थो में अधिगम से तात्पर्य सीखने से है। सीखने के पश्चात् ही व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन होता है। कई बार व्यवहार परिवर्तन का कारण बीमारी थकान और परिपक्वता भी हो सकती है, परन्तु अधिगम उस व्यवहार परिवर्तन को कहते है जो अपेक्षाकृत स्थाई हो। सीखना एक व्यवहारिक बदलाव है। यह बदलाव अनुभूति या अभयास के परिणामस्वरू होता है जो अपेक्षाकृत स्थाई होता है। किसी भी प्रकार के शिक्षण का मूल उद्देश्य अधिगम है।

## श्रीमद्भगवद्गीता में योग के अधिगम की अवधारणा

शाब्दिक अर्थो में योग से तात्पर्य जोड़ना है। किन्ही दो वस्तुओं का मिलना ही योग है। यहा जीवात्मा और परमात्मा का मिलना योग है। मिलन की इस प्रक्रिया को प्रक्रिया को गीता में बार–बार वर्णित कियास गया है।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता योग शास्त्र है। इसको उपनिषद् और ब्रह्म सूत्र के बराबर का ग्रथ माना गया है। यह तीनों ग्रथ मिलकर प्रस्थान त्रयी कहलाते है। गीता के 18 अध्याय महाभारत के भीष्म पर्व के 23 से 40 अध्यायों के सकलन है, इसमें 700 श्लोक है। इसके उल्लेखित 18 अध्यायों में किसी न किसी रू‌प में योग का निरूपण किया गया है। योग का परम लक्ष्य अपने वास्तविक सत्य स्वरूप की प्राप्ति है, जिसके पश्चात् पूर्णता की अनुभूति होती है। इस लक्ष्य तक पहुचने के तीन मार्ग है– ज्ञान मार्ग, भाक्ति मार्ग और कर्म मागै। ज्ञानयोग के द्वारा वास्तविकता का ज्ञान, भक्ति योग के द्वारा परमात्मा की उपासना और कर्म योग के द्वारा अपने संकल्प को परमात्मा को समर्पित कर फल की आकाक्षा से मुक्त होकर अर्थात् निष्काम होकर कर्म करना बताया गया है। मनुष्य अपने प्राकृतिक गुणों के कारण चितनशील भावुक और सक्रिय प्रवृति के होते है, उनकी इस विभिन्नता के कारण ही वास्वविक ज्ञान की प्राप्ति के तीन मार्ग बताए गए है। अद्वय ज्ञन वास्तव मं प्रत्यक्ष अनुभव से प्राप्त होता हे। अधिगम, अभ्यास और अनुभूति का विषय है। ज्ञान प्राप्ति के मार्ग के विद्यमान बधाओं के हटते ही ज्ञान का प्रकाश स्वयमेव प्रकट हो जाता है।

**गीता में योग का अधिगम**

योग के अधिगम का लक्ष्य मनुष्य का सर्वागीण विकास करना है। गीता में मनुष्य के सर्वागीण विकास के लिए अधिविद्या ब्रह्मविद्या के साथ ही साथ उसके अनुशासन अर्थात् योगशास्त्र का विस्तार से वर्णन किया गया है।

मनुष्य ब्रह्म का अंश है। यह ज्ञान शाब्दिक न होकर अनुभूतिपरक है। इस अद्ववय ज्ञान के साक्षात्कार के परिणामस्वरू‌प परमात्मा से इतर कोई भी अनुभूति केवल भ्राति प्रतीत होती है। योगशास्त्र ब्रह्माविद्या के सिद्धांतों एक ही सीमित कराता है। योग शब्द का निर्माण "युज" धातु से हुआ है, जिसका अर्थ जोड़ना संतुलित करना और उसे विस्तार देना है।

गीता मनुष्य के समक्ष सर्वाग–सपूर्ण योग शास्त्र प्रस्तुत करती है जिसमें आत्मा की स्वतंत्रता और एकात्मता के ज्ञान के साथ ही होता है। यह आत्मा ज्ञान मनुष्य जाति को जीवन के नवीन अथै तक ले जाता है। इस अनुशासन से संबंधित प्रत्येक वस्तु को योग की संज्ञा प्राप्ति के मार्ग की बाधाओं के हटते ही प्रकाशित हो जाता है। मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार ज्ञान का अधिगम करता है। सामान्यत मनुष्य चितनशील, भावुक और सक्रिय प्रकृति का होता है। चितनशील प्रकृति के मनुष्य ज्ञान के मार्ग अर्थात् ज्ञानयोग, भावुक प्रकृति के मनुष्य भक्ति के मार्ग अर्थात् कर्मयोग का अनुसरण करते है। इस प्रकार मनुष्य अपनी प्रकृति के अनुसार योग सीखता रहता है।

गीता में वर्णित "सांख्य" शब्द से आशय सांख्य दर्शन से और "योग" शब्द से आशय पातंजल योगदर्शन से नही है। गीता में सांख्य अद्वय ज्ञान और कामनाओं के परित्याग पर जोर देता है और योग समत्व भाव के साथ कर्म करने पर। कामना युक्त कर्म समत्व भाव के साथ संभव नही है।

सुख–दुख कामना युक्त कर्म के परिणाम है। सामान्यतया सुख की कामना और दुख से मुक्ति के लिए मनुष्य कर्म करता है। यहा कर्म बधनकारी है। बंधन से मुक्ति के लिए गीता में कहा गया है कि–

**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।**

**मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सगोऽस्त्वकर्मणि।। 2/47 गीता**

इस कर्मभूमि में जीव को कर्म करने का अधिकर है पर फल पर अधिकर नही है। कर्म का उद्देश्य फल नही होना चाहिए और न ही अकर्म के प्रति आकर्षक होना चाहिए। कर्मयोग के इस प्रसिद्ध श्लोक में अनासक्ति का सिद्धांत मूल रूप से विद्यामान है। जीवन में सफलता–असफलता का संबध सिर्फ व्यक्ति के कर्म पर ही नहीं अपितु अनेक कारणों पर निर्भर है। मनुष्यस जब समस्त प्रकार की आसक्तियों को त्यागकर निष्काम भाव से सिद्धि और असिद्धि में

मन को सामान सामान रखकर अपना कर्तव्य कर्म करता है तब इसे योग करते है, क्योकि मन की समाता ही योग है–

**योगस्थः कुरू कर्माणि सम त्यक्त्वा धनंजय।**

**सिद्धयसिद्धयों समों भूत्वा समत्वं योग उच्यते।। 2/48 गीता**

जिस मनुष्य ने अपने मन को बुद्धि से जोड़कर अपने को स्वरू‍ में स्थित कर लिया है उसके लिए अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कर्म और उनसे प्राप्त परिणाम का कोई अर्थ नही रह जाता है। वह इन सबसे मुक्त हो जाता है। योग बुद्धि से युक्त होकर सब कर्मो को करने की कुशलता का नाम योग है–

**बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।**

**तस्माद्योगाय युज्यस्व योग कर्मसु कौशलम्।। 2/50 गीता**

सफलता और विफलता में मन को सामान बनाए रखने का नाम ही योग है और यही कर्म की कुशलता है, लिमें कर्ता कर्म करने को ही अपना अधिकार समझता है और निष्काम भाव से सतत कर्म करता रहता है। इस प्रकार किया जाने वाला कर्म मोक्ष का कारण बनता है। योग का परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है।

फल की कामना में किया जाने वाला कर्म दुख का कारण बनता है। योगी फल की इच्छा न रखते हुए निष्काम कर्म करता है। निष्काम कर्म का परिणाम दुःख के संयोग से वियोग है। योग वह विद्या है जो दुःख के संयोग से अलग करती है, इसलिए दृढ़ संकल्प और अनुद्विग्न मन से योग का अभ्यास करना चाहिए।

**त विद्याद्दुःखसयोगवियोग योगसंज्ञितम्।**

**स निश्चयेन योक्तव्यों तोगोऽनिर्विण्णचेतसा।। 6/23 गीता**

योग की साधना करने वाला साधक जब बुद्धि योग से समत्व भाव को प्राप्त हो जाता है त बवह समस्त प्रणियों में आत्मा को और आत्मा में समस्त प्राणियों को देखने की दृष्टि प्राप्त कर लेता है। वह सब जगी एक जैसा ही देखता है।

**सर्वभूतस्थमात्मान सर्वभूतानि चात्मनि।**

**ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन।। 6/29 गीता**

यह दृष्टि तब प्राप्त होती है जब दृष्टा को दृश्य जगत से वियोग होने के पश्चात् अपने स्वरू‍ का ज्ञान होता है। अपने स्वरू‍ का वास्तविक ज्ञान योग है।

बुद्धि से युक्त मन समानता के स्वभाव वाला हो जाता है। सामान्यतया मन का स्वभाव चचल है। योग के अभ्यास एवं वैराग्य से उसे वंश में किय जा सकता है, इसलिए भगवान श्रीकृभण अर्जुन को योगी बनने की शिक्षा दे रहे है क्योंकि योगी तपस्व्यिों से ज्ञानियों से और कर्मकाडियों से भी बड़ा है।

**तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्याऽपि मतोऽधिक।**

**कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तरमाद्योगी भवार्जुन ।। 6/46 गीता**

**उपसंहार**

श्रीमद्भगवद्गीता में योग के अधिगम से तात्पर्य मन की स्थिरता से है, जिसकी सिद्धि अभ्यास और वैराग्य से संभव है। स्थिर मन से आशय समान स्वभाव वाले मन से है, जिसमें सिद्धि और सिद्धि के प्रति समत्व भाव होता है। समत्व भाव से किया जाने वाला कर्म दुःख से मुक्ति दिलाता है। योग कर्म की कुशलता है। योग में कुशल योगी सब में अपनी आत्मा को और सबकों अपनी आत्मा में देखता है। ऐसी दृष्टि के साथ किया जाने वाला जाने वाला कर्म मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करता है। योग का परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है, जिसकी सिद्धि बुद्धि योग से समत्व भाव के साथ किये जाने वाले निष्काम कर्म से होती है। यही कर्म की कुशलता है और वह कुशल कर्म ही योग है।

***सह आचार्य**
**व्याकरण विभाग**
**राजकीय आचार्य संस्कृत महाविद्यालय,**
**बौंली (राज.)**

**संदर्भ ग्रंथ सूची**

1. अजीर्मुरहमान 1978 सामान्य मनोविज्ञान विषय और व्याख्या, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली
2. गोयन्दका हरिकृष्णदास, संवत् 2072 योगदर्शन, गीताप्रेस, गोरखपुर
3. तिलक लोकमान्य बालगंगाधर, 2017 गीता रहस्य डायमण्ड पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली
4. तीर्थ स्वामी ओमानंद, संवत् 2069 पातंजल योग प्रदीप, गीताप्रेस, गोरखपूर
5. ब्रह्मप्रकाश, 2009 बाल मनोविज्ञान यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, दरियागंज, नई दिल्ली
6. जयसवाल डॉ सीताराम, 2004 भारतीय मनोविज्ञान और शिक्षा, आर्य बुक डिपों, नई दिल्ली